REVIEW OF RESEARCH
ISSN: 2249-894X
IMPACT FACTOR : 5.7631(UIF)
VOLUME - 13 | ISSUE - 4 | JANUARY - 2024

स्वतंत्रता के बाद की चुनौतियाँ और सोमदत्त की कविता का अध्ययन

निर्मला साहू
हिन्दी विभाग , अवधेश प्रताप सिंह विश्वविद्यालय, रीवा (म.प्र.)

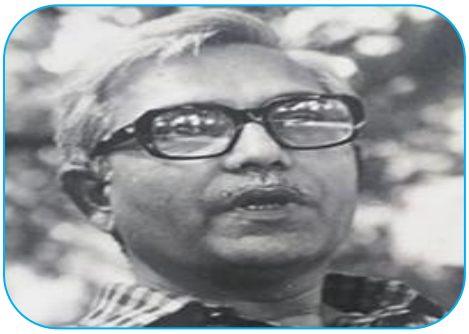

सारांश :—

स्वतंत्रता के बाद के युग में, भारत ने विभिन्न चुनौतियों का सामना किया है। इन चुनौतियों में गरीबी, अशिक्षा, भ्रष्टाचार, आर्थिक विकास की असमानता, सामाजिक और धार्मिक विवाद, स्वास्थ्य सेवाओं की कमी और पर्यावरण संरक्षण की समस्याएँ शामिल हैं। सोमदत्त की कविताएँ भारतीय समाज की समस्याओं को उजागर करती हैं और समाज को समझाने की कोशिश करती हैं। उन्होंने अपनी कविताओं में राष्ट्रीय और सामाजिक मुद्दों पर विचार किया है और उन्हें व्यक्त किया है। इस अध्ययन में, हम स्वतंत्रता के बाद के भारत की चुनौतियों को समझने के लिए और सोमदत्त की कविताओं के माध्यम से उनका मूल्यांकन करेंगे। यह हमें समाज की समस्याओं के समाधान की संभावनाओं को विचार करने में मदद करेगा।

मूल शब्द :— गरीबी, अशिक्षा, भ्रष्टाचार, असमानता, सामाजिक और धार्मिक विवाद।

प्रस्तावना :—

स्वतंत्रता के बाद भारत ने अनेक चुनौतियों का सामना किया है। इस युग में, राष्ट्र ने आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक, और सांस्कृतिक क्षेत्रों में कई महत्वपूर्ण चुनौतियों का सामना किया है। स्वतंत्रता के पश्चात भी, राष्ट्र ने गरीबी, शिक्षा, स्वास्थ्य, विकास, पर्यावरण संरक्षण, सामाजिक विवाद, और राजनीतिक संघर्ष जैसी अनेक चुनौतियों का सामना किया है। सोमदत्त की कविताएं भारतीय समाज की विविध चुनौतियों, आत्म–विचार, और सामाजिक संदेशों को उजागर करती हैं। उनकी कविताएं गहराई से समाज की समस्याओं को छूने का प्रयास करती हैं, और उन्हें समझने के लिए हमें विचार करने पर मजबूर करती हैं। जिन दिनों हिन्दुस्तान का वातावरण स्वतंत्रता प्राप्ति के लिए आन्दोलित हो रहा था उसी समय साहित्य जगत में भी राष्ट्रीय आन्दोलन की रूपरेखा बन रही थी। विश्व रंगमंच में भी वैश्विक क्रांति सम्पन्न हो चुकी थी। सोवियत संघ में भी कम्युनिस्ट पार्टी के प्रभाव से न केवल रूस अपितु समूचा विश्व किसी न किसी रूप में प्रभावित हो रहा था।

स्वतंत्रता प्राप्ति के पूर्व छायावादी काल के प्रवर्तक पंथ सोच रहे थे कि – ''इस युग की आर्थिक और राजनैतिक परिस्थितियों के कारण, हमारे देश में भी बड़ी संख्या में नंगी और भूखी जनता का प्रश्न सबसे आवश्यक और महत्व का प्रश्न बन गया है।''

क्षण भंगुर यह तन, आत्मा के मुक्त चिरंतन
ईश्वर जग में व्याप्त, त्याग से भोगो भव जन।।

दूसरी ओर अज्ञेय अपने ऐतिहासिक उपन्यास 'शेखर–एक जीवनी' के चरित्र नायक शेखर के माध्यम से अपने विचार व्यक्त करते हुये लिखते हैं कि – ''साहित्य वह साहित्य जो क्रांति को प्रेरणा दे और क्रांति? एक पक्षीय नहीं, सर्वतोमुखी क्रांति।'' लेखक का मानना है कि क्रांति ही वह हथियार है जो समूचे समाज में आमूलचूल परिवर्तन लाने में सक्षम है।

प्रभाकर माचवे (हिन्दी की प्रयोगवादी कविता– ''कल्पना'' मई 52) तत्कालीन साहित्य समाज की पहचान और प्रवाहित प्रयोगवादी धारा की विषयवस्तु स्पष्ट करते हुये लिखते हैं कि – ''इस काल की तमाम विषयवस्तु समाज–निरपेक्ष भावनाओं पर आधारित है, इनकी भाषा का रूप विधान नवीनतम रागात्मक सम्बन्धों के नाम पर मध्यमवर्गीय व्यक्ति की मानसिक बीमारियों का सहानुभूतिपूर्ण और मोहक अलंकरण है। इसी आत्मीयता के कारण वे विषयवस्तु पर जोर नहीं देते हैं।''

श्री रामविलास शर्मा (लेखक : नयी कविता : स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद) ने सन् 49 में प्रगतिवाद के संदर्भ में अपने विचार व्यक्त करते हुये लिखते हैं – ''यह 'प्रगतिशील' शैली उन कवियों की देन है जो अचानक प्रलय, ताण्डव और हुँकार से देश विदेश ही नहीं, समूचे ब्रम्हाण्ड को ही भस्म कर देना चाहते हैं।''

एक उदाहरण के आधार पर अपनी बात को स्पष्ट करते हुये वे कहते हैं कि –

जागो ओ किसानों आज,
जागो ओ मजूरो आज।
बागी के तड़पते गीत,
भूखी अग्नि धुँआधार।।

आगे वे लिखते हैं कि – ''यह बात आजमा कर देखी जा सकती है कि जो कवि किसान–मजदूरों से जितना ज्यादा दूर होता है, वह उन्हें जगाने के लिए उतना ही हुँकार और धुँआधार की ध्वनि ज्यादा करता है। दरअसल किसान मजदूर कबीर के खुदाया की तरह बहरे नहीं हैं कि उन्हें जगाने के लिए इतनी जोर से बाँग देने की जरूरत पड़े।''

सन् 1947 के बाद प्रयोगवाद का प्रभाव बढ़ने लगता है। अपने नाम और अनूठी विचारधारा के अनुरूप, साहित्य में भी परम्परागत कथ्य, विचार शैली में परिवर्तन दिखाई देने लगा था और साहित्य के क्षेत्र में नितान्त अछूते माने जाने वाले विषय को भी नवीन सर्जनात्मकता के साथ, सार्थकता प्रदान की गयी।

सन् 1954 के बाद, नयी कविता ने आकार लेना शुरू कर दिया था तथा अज्ञेय ने नयी कविता को अपना आशीर्वाद दिया। तत्कालीन साहित्य समाज में नयी कविता के तथाकथित सूत्रधार उसे क्रमशः प्रयोगवाद से अलग करते जा रहे थे, उस समय नयी कविता की सम्भाव्य भूमिका को और अधिक स्पष्ट करते हुये वे कहते हैं –

''आ, तू आ, हाँ आ,
मेरे पैरों की छाप–छाप पर रखता पैर
मिटाता उसे, मुझे मुँह भर गाली देता– आ, तू आ।
जयी युग–नेता पथ–प्रदर्शक
आ, तू आ, ओ गतानुगामी।''

नयी कविता के प्रभाव के तहत साहित्यकारों का ऐसा वर्ग तैयार हो रहा था जो 'निरूत्तर कला की अवहेलना' कर रहा था इसका उदाहरण प्रस्तुत करते हुये कवि निरन्तर कहते हैं कि –

कम्युनिस्ट पार्टी कहती हैं कि आजादी झूठी है–
इत्ते से पानी से बुझने वाली, किस की तृषा यहाँ?
पहिले से गरजने वाली, यह आजादी मृषा–मृषा!

विश्लेषण :–

अपने लेख ''साहित्य और राष्ट्रीय एकता'' में सोमदत्त जी ने लिखा है कि – 'हमारे देश में कई भाषाएँ हैं और उनके अपने अपने साहित्य हैं, लेकिन अलग–अलग भाषाएँ बोलने के बावजूद हम सब भारतीय हैं, उसी तरह अलग–अलग भाषाओं में रचे जाने के बावजूद भारतीय साहित्य ही कहलाता है। अपनी बात के संदर्भ में– महान साहित्यकार तकबी शिवशंकर पिल्लै के लेख की कुछ पंक्तियों को उद्धृत करते हुये बताते हैं कि – ''साहित्य की भावनात्मक राष्ट्रीयता का सबसे बड़ा स्त्रोत जीवन पद्धति है। मैं सोचता हूँ कि हमारी भी एक विशिष्ट शैली है, हमारी अपनी जो भारतीय है।'' इसी लेख में अपनी बात आगे बढ़ाते हुये वे कहते हैं कि – ''मेरे ख्याल से इस धरती पर शायद ही कोई ऐसी जगह होगी, जहाँ का साहित्य, वहाँ के लोगों की जीवन शैली पर आधारित न हो। सांस्कृतिक जनश्रुतियों से हमारी इस आत्मीयता ने भारतीय इतिहास के हर युग में, संकटों का योग्यता से सामना किया है। भारतीय साहित्य ने सदा ही नस्ल, धर्म और पंथ की सीमाओं से ऊपर उठकर, अपने समय की चुनौतियों का सामना करने का पाठ पढ़ाया है, शायद वही कारण है कि जब भी देश की भावनात्मक एकता में दरार या तनाव आया है तब तब भारतीय साहित्य ने उसकी जड़ पर गहरा प्रहार किया है और सभी समाज के संत कवियों–साहित्यकारों, रचनाकारों ने सदा ही अपनी हैसियत सीमा से ऊपर उठकर उसे बाँधने का भरसक प्रयास किया है।

वहीं दूसरी ओर स्वतंत्रता के बाद, देश में 'समाजगत–जुड़ाव, मूल्य, संस्कार में कमी होती देखकर, वे भड़ककर अपने लेख के माध्यम से कहते हैं कि – ''स्वतंत्रता पूर्व के काव्य में, साहित्य के माध्यम से जो भावनात्मक एकता संभव हो रही थी, वह आज क्यों नहीं? आखिर क्या कारण है, साहित्य हमारे लिये बोझिल, अछूत बनता जा रहा है। जो साहित्य लोगों को जोड़ने–बनाने, सँवारने का काम किया करता था, वही स्वार्थ, लंपटता और द्वेष बढ़ाने का माध्यम क्यों बनता जा रहा है, अपना क्रोध, असंतोष जताते हुये वे अपनी कविता "धर्मान्दा खाने वाले कुछ तो शरमाओ–धर्मान्दा देने वाले कुछ तो गर्माओ'' में कहते हैं कि –

उगल–उगल कर लपटें मंदिर में–मंस्जिद में।
तुम्हें झोंक कर होली में जो खुश बैठे हैं/अपनी–अपनी

मंडलियों में।
छौंक लगाते, शेखी की लाशें गिनवाते/हँसते ठठा–ठठा कर
गिनती गिनते दंगे में मरने वालों की।

कविता की अगली पंक्तियों में उन्हीं विघटनकारी ताकतों के प्रति अपनी भड़ास निकालते हुये वे कहते हैं कि –

''कहाँ से मिले पैसे तुझको जो बाँट रहा है/ये पिस्तौलें।
किसने दी गोली तुझको ये/किसने?

भारतीय संस्कृति, मूल्य पर भरोसा जताते हुये उन ताकतों को ललकारते हुये कहते हैं कि –

''किसने बताया तुझे–भाई–भाई का दुश्मन होता है।
किसने तुझे सुझाया–अल्ला अलग राम से कुछ होता है।
किसने कहा कि राम, खुदा के घर काँटे बोता है।
जल्लादों की दुनिया/व्यौपारों की दुनिया।।''

स्वतंत्रता के बाद भारत में पसरती, पूँजीवादी व्यवस्था और उसके घातक परिणामों, अलगाववादी ताकतों और तकनीकियों की आड़ में 'भारतीयता के हनन' में अपनी मंशा सामने लाते हुये कहते हैं कि 'गुलाम' कविता में –

कैंचियाँ जानी तो खुश हुआ/
किस बारीकी से कतरती है बड़े बाल/
किस बारीकि से बाँहें, गले, पाँयचे।

किस खूबसूरती से चिड़िया फूल/मगन था, लहालोट था, डूबा था/ यकायक उसने कतरनाा शुरू कर दी/ हमारी बाँहें/ हमारी जुबानें/ हमारे सिर/ बहुत देर हो चुकी थी यह जानते–जानते/ कि हम उसके जरखरीद गुलाम हैं।

भारतीय परिवारों में निरन्तर घटती आत्मीयता, लगाव, परस्पर प्रेम विश्वास को भाँपकर उसे दूर करने की कोशिश में तिलमिलाते हुये वे अपनी कविता के माध्यम से कहते हैं कि –

आग/पानी पी पानो/बड़वानल ऊपर ला/
पवन दावानल बन।
माटी ओ माटी चेत/बड़वानल/दावानल आते हैं ?
जलधार पै तैर, पवनपंख पे/उमड़ते घुमड़ते रक्त में
जगा/बचा अपने लाड़लों को/उनको बता/
कम्प्यूटर यह खबर नहीं देगा।

बुनियादी रूप से सोमदत्त एक अत्यनत संवेदनशील भावुक कवि थे। इसलिए जनवादी मूल्यों के लिए प्रतिबद्ध थे प्रत्येक संघर्षरत, शोषित मनुष्य का उसकी अपनी जिंदगी पर मालिकाना हक दिलाना चाहते थे। अतः कहा जा सकता है कि स्वतंत्रता और उसके बाद भी चुनौतियों के प्रति वे सजग, सावधान थे और भरसक अपनी कविताओं के माध्यम से लड़ा भी और लोगों को मजबूती से सामना करने का सम्बल भी प्रदान किया।

समय निरन्तर परिवर्तनशील होता है। समाज के प्रत्येक पक्ष में परिवर्तन होना स्वाभाविक है, साहित्य भी इससे अछूता नहीं रहा। इसी परिवर्तन के तहत कविता के कथ्य, मुहावरे और शिल्प में परिवर्तन हुआ है। इन तमाम परिवर्तनों के फलस्वरूप कविता में यथार्थ की बेबाक अभिव्यक्ति को बल मिला।

समाज और साहित्यिक समाज में 'साम्यवाद' के प्रभाव में फलस्वरूप साहित्यिक कथ्य सामग्री में पहले से अधिक असंतोष, अस्वीकृति, मोहभंग और विद्रोह का स्वर उभरकर सामने आने लगा। परस्पर विरोधी और अस्वीकृति के स्वरों को काव्य के रूप में स्वीकृति मिलने लगी, इस स्वीकृति में सामाजिक परिवर्तन का स्वर भी मद्धम रूप से सुनाई दे रहा था।

इसमें कोई संदेह नहीं है कि श्री सोमदत्त उन विरले साहित्यकारों में से एक है, जिन्होंने साहित्य को अपना अहम कर्म माना, इसे जीवनधर्म से भी अधिक महत्व दिया, साथ ही रचनाशीलता का आधार बनाया। भारतीय साहित्य में प्रस्तुत 'काव्यादर्श' को गहन अनुभूति के साथ, उसमें लोक संवेदना का तानाबाना गूँथ कर अनूठे रूप में प्रस्तुत किया।

सोमदत्त जी के साहित्य में अनेकों जगह यह इशारा मिलता है कि उनकी जड़ें कहाँ हैं? स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद की निरन्तर परिवर्तित होती चुनौतियों के बीच में भी वे अपने संस्कार, मूल्य, जड़ों को निश्चित मुकाम तक पहुँचाना चाहते थे। विकास की अंधी दौड़ में पुरातन और आधुनिक के बीच द्वन्द में भी एक अलग पहचान बनाने में सफल हुये हैं, वे सफल होने का सहज तरीका भी लोगों को सुझाते हैं। वे कहते हैं कि –

जब तक आदमी के हाथ और आँखें हैं,
आँखों में धरती आकाश फूल पत्ती है।
दूध दही नगाड़े बेटे बेटी हैं/
गाड़ी बैल मोर चिड़िया चाँद तारे हैं,
औरतें हैं सपन भरे हाथों से खिलखिली/
मिट्टी गोबर से सनी
बच्चे हैं खिलौने भरे मन में उभे चुभे

लड़कियाँ हैं पाँखुरियों तितलियों की फरफराहटों में पगीं,
बहुएँ धरती अल्लास फलाँगती/बेसुधियाँ सुधियों में
दीवारें खाली नदी रहेंगी/ माँड़ने माड़े जाएँगे।।''

प्रत्येक देश और समाज के मानदण्ड प्रायः भिन्न होते हैं, जिनमें भी समय के परिवर्तन के साथ परिवर्तन होता जाता है, रचनाकार उसी परिवर्तित समाज का सक्रिय हिस्सा होता है। अतः अनुभव भी नये–नये रूप में प्राप्त होता है जिससे उसकी भाषा शैली, अभिव्यक्ति में परिवर्तन होना लाजिमी है। अभिव्यक्ति के जिस रूप को आज से 70–80 वर्ष पूर्व 'योग्य' नहीं समझा जाता है वही रूप आज सटीक, यथार्थ अभिव्यक्ति का पर्याय मानाजाने लगा है, कथावस्तु में जिसे विभन्न बिम्बों, प्रतीकों के माध्यम से प्रस्तुत किया जाता था, 'अश्लील' माना जाता था, वही बिम्ब, प्रतीक आज आधुनिकता का जामा पहनकर इतरा रहे हैं।

बार–बार अमानवीयता की ओर ढकेलने वाले सामाजिक, राजनैतिक और अन्ततः आर्थिक दबावों के बीच, जीवन की सच्चाईयाँ अत्यन्त कुरूप दिखाई देने लगी हैं, जीवन को, जीवन बनाने वाली तमाम तरकीबें क्रूर होती नजर आ रही हैं– ऐसी स्थिति में मनुष्य को भावनात्मक संवेदनात्मक स्तर पर विचलित करने की क्षमता सिर्फ काव्य/साहित्य में होती हैं, क्योंकि भावना के रूप में पाठक के मन में सीधे उतरते हुये कविता अंतर्जगत के सजीव दृश्य के रूप में प्रकट होती हैं। संवेदनात्मक द्वन्द के रूप में घटती हैं, यह संवेदनात्मक द्वन्द उसके जीवन–मूल्यों को खण्डित भी करता है और नए सिरे से रचता भी है।

निष्कर्ष :–

समग्रालोचन के आधार पर यह कहा जा सकता है कि कि 'परिवर्तन' प्रकृति का शाश्वत नियम है, जिसके परिणामस्वरूप मनुष्य और परिस्थितियों में भी परिवर्तन अवश्यम्भावी है। स्वाभाविक है कि मनुष्य का संवेदनात्मक धरातल परिस्थितियों की सच्चाईयों से वाकिफ कराता है वहीं दूसरी ओर उसमें छिपे कृत्सित, विचार, दृष्टि, मूल्य में छिपी क्रूरताओं से भी रूबरू कराता है। सोमदत्त की कविताएं इन चुनौतियों को उजागर करती हैं और समाज को समझाने की कोशिश करती हैं। उन्होंने अपने कविताओं में भारतीय समाज की विभिन्न पहलुओं को छूने का प्रयास किया है। इस अध्ययन के माध्यम से, हमें समाज की समस्याओं को समझने के साथ–साथ समाधान की संभावनाओं को विचार करने में मदद मिली है। हमें यह भी मालूम हुआ कि कविता एक ऐसा माध्यम है जिसके माध्यम से हम समाज की समस्याओं को व्यक्ति के अनुभवों और भावनाओं के माध्यम से समझ सकते हैं।

संदर्भ :–

1. साक्षात्कार – सोमदत्त स्मृति अंक जनवरी–मार्च, 1989–90.
2. कोठार के बीज, वर्ष 2003.
3. राग भोपाली – सोमदत्त स्मृति अंक, वर्ष 2011, सम्पादक शैलेन्द्र शैली.
4. सोमदत्त कृत पाण्डुलिपियाँ, डायरियाँ.